गाथा का भावार्थ है। उसमें क्या कहा ? – वह कहते हैं। प्रथम तो अपना शुद्धस्वरूप, परद्रव्य से भिन्न, राग से भिन्न, पर्याय से भी भिन्न है — ऐसे आत्मा का अनुभव हो, उसका नाम जितेन्द्रिय जिन कहा गया है। जो क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय है, राग है या निमित्त है, वह सब परद्रव्य — परज्ञेय गिनने में आया है। ज्ञायकस्वभाव स्वज्ञेय, उस स्वज्ञेय का लक्ष्य करके — आश्रय करके पर से अपनी चीज को पृथक जानना, परिपूर्ण जानना, अधिक जानना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, यह पहली श्रेणी की स्तुति है — ऐसा है। दूसरी श्रेणी की इस (गाथा) ३२ में है।

भावार्थ : भावक मोह के अनुसार.... क्या कहते हैं ? ज्ञानी को भी, समकिती को भी, मुनि को भी आत्मज्ञान के उपरान्त चारित्रदशा हुई है, उसको भी भावक जो कर्म – जड़, उसके अनुसार होनेवाला विकारी राग-द्वेष आदि भाव, वह भाव्य है। **भावक मोह के अनुसार....** है ? स्वभाव के अनुसार नहीं। कर्म का निमित्त जो उदय में आया, वह स्वभाव की ओर का इतना आश्रय नहीं और पर का आश्रय करता है तो उसमें राग-द्वेष विकारी पर्याय, समकिती को भी—ज्ञानी को भी उत्पन्न होती है। आहाहा! उसको जीतना, अर्थात् **प्रवृत्ति करने से अपना आत्मा भाव्यरूप होता है....** आहाहा! बहुत

सूक्ष्म बातें हैं। **उसे भेदज्ञान के बल से....** अर्थात् निमित्त के अनुसार जो प्रवृत्ति हुई, उस अनुसार छोड़कर, स्वभाव के अनुसार विशेष उग्र आश्रय लिया। आहाहा! **भिन्न अनुभव करनेवाले जितमोह जिन हैं।** जितमोह; क्षीणमोह नहीं। क्षीणमोह का पाठ है न? पाठ है, तैंतीस में **जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो** — इसलिए कोई कहे कि इस जितमोह का अर्थ क्या? तो यहाँ (गाथा) ३३ में लिया है क्षीणमोह। पहले जो राग का — विकार का स्वभाव को अनुसरण करके उपशम करता था, उसको जितमोह कहा गया है। उपशमश्रेणी, हाँ! आठवें गुणस्थान में... आहाहा! सातवें तक अबुद्धिपूर्वक कर्म के भावक के अनुसार रागादि होते थे। समझ में आया? कर्म के भावक के अनुसार जो राग, द्वेष, पुण्य, पाप आदि विकल्प.... मोहभाव, वह पापभाव है। उसको जो निमित्त के अनुसार भाव्य था, वह नहीं होने देना... आहाहा! और ज्ञायकस्वरूप भगवान का उग्र आश्रय लेकर उस विकार को दबाना, उपशम करना, वह दूसरे प्रकार की - ऊँचे प्रकार की स्तुति (है)। आहाहा! ऐसी बातें अब इसमें लोगों को कहाँ (ख्याल आवे)। बापू! अन्दर मार्ग ऐसा है।

इस भावक मोह के अनुसार मुनि को भी सातवें गुणस्थान में मोहकर्म के निमित्त के अनुसार जो अबुद्धिपूर्वक राग-अन्दर विकार था, उसे स्वभाव का अनुसरण करके उस विकार को दबाकर उपशम करना। उपशमश्रेणी, श्रेणी की अपेक्षा से उपशम, यह लेंगे। भावार्थ में उपशम आदि करके शब्द है, जरा सूक्ष्म (है) बाद में अर्थ करेंगे।

आत्मा भाव्यरूप होता है उसे भेदज्ञान के बल से भिन्न अनुभव करनेवाले जितमोह जिन हैं।.... आहाहा! यह तो अभी (इस क्षेत्र में) हो नहीं सकते किन्तु वस्तुस्थिति बतलाते हैं। समझ में आया?

यहाँ ऐसा आशय है कि श्रेणी चढ़ते हुए.... देखो! आठवें में, आहाहा! **जिसे मोह का उदय अनुभव में न रहे....** आहाहा! इस वस्तु का ख्याल तो यह करे कि उपशमश्रेणी आठवें गुणस्थान में चलती है, वहाँ मोह का उदय अनुभव में नहीं रहे। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ अन्तर में विशेष झुक जाये; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है परन्तु मोह के अनुसार सातवें गुणस्थान तक जो रागादि थे... आहाहा! छठवें गुणस्थान में तो बुद्धिपूर्वक राग था, अबुद्धिपूर्वक (भी था)। दोनों ही थे, सातवें में

बुद्धिपूर्वक राग नहीं था परन्तु भावककर्म के अनुसार राग-द्वेष — ऐसा परिणाम, भाव्य होता था। आहाहा! सातवें में। वह अन्दर में सीधे स्वभाव के अनुसार करके जो राग आत्मा में-पर्याय में था, उसको दबा देना, उपशम करना, वह दूसरे प्रकार की पहले से ऊँची स्तुति है। समझ में आया?

ऐसा आशय है कि श्रेणी चढ़ते हुए जिसे मोह का उदय अनुभव में न रहे.... आहाहा! **और अपने बल से....** अपने बल से स्वभाव के अनुसार में पुरुषार्थ करने से, आहाहा! **उपशमादि करके....** श्रेणी तो उपशम है परन्तु वहाँ राग का क्षयोपशम होता है थोड़ा अथवा ज्ञानावरणी का भी क्षयोपशम होता है। समझ में आया? आहाहा! उपशम आदि शब्द पड़ा है न? है, राग का उपशम करते हैं और दूसरे जो ज्ञानावरणी आदि हैं, उनका विशेष क्षयोपशम होता है। **वह उपशमादि करके....** है तो उपशमश्रेणी परन्तु उपशम आदि करके... आहाहा! ज्ञानावरणी आदि का उदय है तो उसके अनुसार जरा ज्ञान की हीनदशा होती थी। आहाहा! वह स्वभाव के अनुसार ज्ञान का क्षयोपशम हुआ। वहाँ ज्ञान का उपशम नहीं होता; उपशम तो मोह का होता है। यह तो बहुत सूक्ष्म बात भाई! आहाहा!

अपने स्वभाव का भान है, अनुभव हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, और स्वरूप का चारित्र-आचरण भी थोड़ा हुआ; पूर्ण आचरण हो, तब तो यथाख्यातचारित्र हो जाये। तब तो भावक के अनुसार भाव्य करना रहता नहीं। समझ में आया? पहले थोड़ा-थोड़ा अभ्यास होना चाहिए। यह तो कॉलेज है, आहाहा! वीतराग भगवान की कॉलेज है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु का, पर्याय के प्रेम से हटकर, राग के प्रेम से हटकर, निमित्त के प्रेम से हटकर अपने ज्ञायक में एकाग्रता करके प्रेम लगा दिया। प्रेम का अर्थ एकाग्रता। उसका नाम प्रथम जितेन्द्रिय स्तुति - पहले प्रकार की; पहले नम्बर की नहीं, पहले प्रकार की (स्तुति) कहा जाता है। आहा!

अब, दूसरे प्रकार की ऊँची स्तुति — दूसरा प्रकार है परन्तु वह पहले नम्बर से ऊँची है। आहाहा! ज्ञानी को भी सातवें गुणस्थान तक भावक मोहकर्म के अनुसार.... समकिती है, अप्रमत्तदशा में भी अबुद्धिपूर्वक राग - भाव्य होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उसको पर के अनुसार का जो भाव है, पुरुषार्थ छोड़कर अन्दर में लगाना तो वह राग-

द्वेष पुण्य-पाप का भाव वह विकल्प है, उसे दबा देता है, दबा देता है और उपशमभाव प्रगट होता है तथा ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय, अन्तराय आदि का क्षयोपशम भाव होता है। समझ में आया? श्रेणी उपशम है परन्तु उपशम तो अकेले मोह का होता है तो साथ में शुद्धता बढ़ती है — ज्ञान की, आनन्द की, वीर्य की, यह सब शुद्धता बढ़ती है। समझ में आया? उस उपशमश्रेणी में यह क्षयोपशमभाव है — अब ऐसी बात कहाँ, उदय, उपशम और क्षयोपशम....

भगवान परमपारिणामिक स्वभाव, प्रभु परम स्वभावभाव का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुआ, वह पहली स्तुति है; फिर अस्थिरता में पर्याय अबुद्धिपूर्वक थी,.... छठवें (गुणस्थान) तक बुद्धिपूर्वक राग था, बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक दोनों ही (प्रकार का राग था)। समझ में आया? वे देवकीनन्दन एक बड़े पण्डित थे, इन्दौरवाले थे, वे आये थे। उन्होंने पंचाध्यायी का अर्थ किया था कि छठवें गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक राग है और सातवें गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक है, तो उनको कहा (यह बात ठीक नहीं है)। वह तो कहते हम तो पण्डित हैं, ऐसा है नहीं। व्यक्ति सरल था, पण्डित था, देवकीनन्दन! पंचाध्यायी का अर्थ सुधारो कि छठवें गुणस्थान में भी ख्याल में आनेवाला, वह बुद्धिपूर्वक राग है और उसी समय ख्याल में नहीं आता, वह अबुद्धिपूर्वक है। अब ऐसी बातें.... और सातवें गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक - ख्याल में आता है ऐसी बात है नहीं परन्तु अबुद्धिपूर्वक है, क्योंकि उपयोग वहाँ लागू नहीं होता, परन्तु राग होता है, उस राग को भावक के अनुसार होता था, वह अपने भगवान की ओर का अनुभव होकर, यह स्तुति हुई। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें! उस राग को उपशम करना और दूसरी पर्याय को - क्षयोपशम की वृद्धि करना।

श्रोता : अकेले मोह में ही उस क्षयोपशम का, उपशम का कार्य होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह का उपशम-क्षयोपशम होता है परन्तु मोह का उपशम लेना है। यहाँ उपशमश्रेणी लेनी है न! है तो क्षयोपशमदशा दशवें गुणस्थान तक, परन्तु यहाँ दबाया है; इसलिए उपशमश्रेणी लेना है। क्षयोपशम तो है परन्तु...

श्रोता : अकेले मोह का ही उपशम क्यों दूसरे कर्म का क्यों नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे कर्म का उपशम नहीं होता, बिल्कुल उपशम नहीं, उपशम एक मोह का (ही होता है)।

क्षायिक (छह) आठ का; उपशम एक का; उदय आठ का; क्षयोपशम चार का — ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, और अन्तराय। सूक्ष्म बात भाई! आठ कर्म हैं तो उदय आठ का; अब उपशम अकेले मोह का; क्षयोपशम चार का — ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय। उपशमश्रेणी में मोह का उपशम है, यह दबाने की अपेक्षा से, वरना है क्षयोपशम।

श्रोता : ज्ञान का क्षयोपशम।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका भी क्षयोपशम है, दशवें गुणस्थान तक। उदय है न, इतना क्षयोपशम है परन्तु यहाँ यह अपेक्षा लेना है। अब ऐसी बातें हैं। मोह का भी क्षयोपशम होता है, मोह का उपशम होता है और मोह का क्षय होता है। ज्ञानावरणी का उदय होता है, क्षयोपशम होता है, क्षय होता है, उपशम नहीं। दर्शनावरणी का उदय होता है, क्षयोपशम होता है, क्षायिक (क्षय होता है) उपशम नहीं। अन्तराय का उदय होता है, क्षयोपशम होता है, क्षायिक होता है, उपशम नहीं। अब ऐसी बातें कहाँ? आहाहा! यहाँ तो समय-समय का हिसाब है। आहाहा!

जब तक उपशमश्रेणी तक न आवे, तब तक समकिती मुनि को सप्तम गुणस्थान तक, आहाहा! भावककर्म के अनुसार जरा अबुद्धिपूर्वक राग है। आहाहा! उसके समक्ष पुरुषार्थ को बढ़ाकर स्वभाव का विशेष अनुसरण करके, उस भावक के अनुसार राग था उसे दबा दिया, उपशम कर दिया — ऐसे राग-द्वेष आदि विशेष लेना, वे सोलह बोल हैं न? अमृतचन्द्राचार्यदेव ने सोलह बोल - पाँच इन्द्रियाँ - ऐसे लिया है और अन्य भी विचार लेना - ऐसा लिया है — जयसेनाचार्य की टीका में ऐसे बोल लेकर अन्य असंख्य विभाव का व्याख्यान कर लेना - ऐसा (लिया है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं। विकल्प के अनेक प्रकार हैं। अनेक प्रकार में से असंख्य प्रकार का विभाव है। आहाहा! तो जिस जीव को जिस प्रकार का विकल्प है, उसको स्वभाव के अनुसार दबा देना। आहाहा! 'उपशम आदि करके' शब्द में उपशम आदि करके (लिया है)। अकेले उपशम करके नहीं लिया,

श्रेणी उपशम है परन्तु क्षयोपशम साथ में है। आहाहा! अरे प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? तेरी दशा में क्या होता है? आहाहा! **आत्मानुभव करता है, उसे जितमोह कहा है। यहाँ मोह को जीता है; उसका नाश नहीं हुआ।....** क्षय नहीं किया है, दबा दिया है — ऐसी एक स्तुति का प्रकार लिया तो सबको उपशमश्रेणी आती है - ऐसा कुछ है नहीं। क्या कहा? कि आत्मा का अनुभव हुआ और आगे बढ़कर सबको उपशमश्रेणी होती ही है — ऐसा नहीं है परन्तु उपशमश्रेणी होती है, उसे दूसरे प्रकार की स्तुति गिना जाता है इतना... क्या कहा? कोई तो आत्मा का अनुभव करके आठवें गुणस्थान से क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं, राग का नाश करके स्वभाव का अनुभव करते हैं - अन्दर चले जाते हैं। अतः सबको उपशम होता है - ऐसा नहीं है परन्तु यहाँ तो स्तुति के प्रकार का वर्णन करना है; अतः तीन प्रकार की स्तुति में दूसरी स्तुति में राग को उपशम करना — ऐसी एक स्तुति ली है परन्तु सबको (उपशम) होता ही है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

श्रोता : सम्यग्दर्शन में प्रथम उपशम होता ही है — ऐसा चारित्र में नियम नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यहाँ यह प्रश्न नहीं है। यहाँ तो श्रेणी की बात है। कहाँ उपशम होता है यह बात नहीं है, यहाँ तो श्रेणी की बात है। समकित का उपशम होता है, पहले वह यहाँ प्रश्न नहीं है, वह तो पहले उपशम हो गया। उपशम में से क्षयोपशम होकर क्षायिक हुआ, उसकी कोई बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो चारित्रमोह का जो उपशम है, उसकी बात है। मोह शब्द लिया है, वह चारित्रमोह है। मोह शब्द तो पाठ में है, वह चारित्रमोह का मोह है। दर्शन का मोह तो है नहीं, वह तो पहली श्रेणी में नाश कर दिया है। आहाहा! अरे! ऐसा सब जानपना रखना...।

श्रोता : पहले जानपना तो होना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चीज अन्दर की बात। थोड़ा समय लेना पड़ेगा प्रभु! तेरी चीज में क्या है और कैसा दर्शन होता है और कैसा उपशम चारित्र होता है और कैसे क्षपक चारित्र होता है, वह कैसी पद्धति है? — यह जानना चाहिए। आहाहा! खीमचन्दभाई नहीं आये? (श्रोता : दोपहर में आयेंगे।) ठीक, दोपहर में आयेंगे।

यहाँ 'अपने बल से' शब्द पड़ा है, वह कर्म का उदय घट जाये, इसलिए पुरुषार्थ

होगा — ऐसा नहीं है, क्योंकि आत्मा में एक 'अभाव' नाम का गुण है। सैंतालीस गुण (शक्तियाँ) हैं न? उसमें 'अभाव' नाम का एक गुण है। इस कर्म का अभाव हो तो अभाव गुण है — ऐसा नहीं है, अपना स्वभाव ही ऐसा है कि पर के अभाव से परिणमना - ऐसा अभाव गुण है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो सर्वज्ञ वीतराग की शैली है, यह सब तो.... आहाहा! अपने बल से उपशम आदि करके — यह कहने में ऐसा आशय है कि कर्म का उदय वहाँ मन्द हो गया; इसलिए यहाँ आत्मा की ओर झुका है - ऐसा नहीं है। आत्मा की ओर झुकने के बल से झुका है। आहाहा! अपने बल से उपशम आदि करके आत्मानुभव करना, आत्मानुभव करता है, उसे जितमोह कहा जाता है। यहाँ मोह को जीता है, नाश नहीं हुआ है।

अत: कोई ऐसा कहे कि उपशम आदि निकाला कहाँ से? कि क्षीणमोह कहते हैं न, ३३ वीं (गाथा में), तो वह जितमोह है, जितमोह अर्थात् मोह का नाश हो गया हो तो क्षीणमोह कैसे लिया? तो यहाँ जितमोह का अर्थ (यह है कि) मोह को दबा दिया है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं! यहाँ तो स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ तो उसे राग होता ही नहीं - ऐसा नहीं है। राग कहो या दु:ख कहो या आकुलता कहो। आहाहा! सातवें गुणस्थान में भी अबुद्धिपूर्वक आकुलता है। राग है न? आहाहा! और छठवें गुणस्थान में आत्मज्ञान के उपरान्त स्वरूप की रमणता में जम गया हो, उसको भी राग का व्यक्त-अव्यक्त दो प्रकार का है। गोम्मटसार में यह शब्द है। व्यक्त-अव्यक्त। छठवें गुणस्थान में जितना राग ख्याल में आता है, वह व्यक्त, उसमें उपयोग स्थूल है, तो ख्याल में नहीं आवे, उस राग को अव्यक्त कहते हैं, समझ में आया? अत: राग व्यक्त-अव्यक्त दो प्रकार का, छठवें गुणस्थान में भी होता है। सातवें में बुद्धिपूर्वक राग नहीं है, अबुद्धिपूर्वक (है)। आहाहा! वह भी इतना दु:ख है। समझ में आया? इतना — 'राग आग दाह दह्यौ सदा' वह राग भी आकुलता - कषाय है, अग्नि है। आहाहा! शान्त... शान्त... प्रभु आनन्द के नाथ में राग होता है, वह दु:ख, अशान्ति, आकुलता है। आहाहा!

समयसार नाटक मोक्षअधिकार में तो ऐसा कहा (कि) छठवें गुणस्थान में आत्मज्ञान

के उपरान्त आनन्द की-चारित्र की धारा बहती है, उसको भी जो पंच महाव्रतादि का विकल्प उठता है, वह जगपन्थ है। राग, उदयभाव है, वह जगपंथ है, संसार है। आहाहा! समयसार नाटक में है न? पहले बताया था — समयसार नाटक, मोक्ष अधिकार, चालीसवाँ बोल है। आहाहा! मोक्ष-३४ आया सामने यह ४०। 'ता कारण जग पंथ एव, उत शिव मारग जो' आहाहा! आत्मज्ञानी अनुभवी क्षायिक समकिती हो और अन्दर भावलिंग मुनिदशा प्रगट हुई हो, उसको भी जो पंच महाव्रतादि, श्रवण का, कहने का विकल्प उठता है, वह जगपंथ है। आहाहा! वह इतना संसारमार्ग है! चालीसवाँ बोल है, मोक्ष अधिकार 'ता कारण जग पंथ एव, उत शिव मारग जो' और स्वभावसन्मुख में जितनी स्थिरता हो गयी, वह शिवमारग अप्रमत्तदशा है, वह शिवमारग है। आहाहा! 'परमादी जग को ढुके' छठवें गुणस्थान में मुनि, तीर्थंकर - छद्मस्थ हो, उनको छठवें गुणस्थान में जो विकल्प आता है, वह प्रमादी जगत की ओर ढुकते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है बापू! 'अप्रमादी शिव और' स्वरूप में अप्रमाद होकर स्थिर हो जाता है, वह शिवमार्ग है और जब तक प्रमाद का विकल्प है, मुनि को हो। आहाहा! तीर्थंकर छद्मस्थ है तब तक... आहाहा! छठवें-सातवें में झूलते हों प्रभु, उन्हें छठवें (में) विकल्प आता है, वह प्रमाद है। आहाहा! दोष है, दुःख है, आकुलता है। आहाहा!

छठवें में व्यक्त-अव्यक्त आकुलता है; सातवें में अव्यक्त आकुलता है-ख्याल में नहीं आती है परन्तु अन्दर अबुद्धिपूर्वक आकुलता है। आहाहा! उसको मोहकर्म का भावक में वहाँ अनुसरण था जो अन्दर सातवें में भी... आहाहा! वह आगे बढ़कर अन्दर पुरुषार्थ का बल करके, वह रागभाव जो उत्पन्न होता था, उसे दबा देगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है। बालचन्दजी! परिचय बिना समझ में आये ऐसा नहीं, बापू! आहाहा! ऐसा मार्ग है बापू! क्या कहें? आहाहा! अरे! यह ३२ गाथा हुई।

गाथा ३३

अथ भाव्यभावकभावाभावेन –

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं।।३३।।

जितमोहस्य तु यदा क्षीणो मोहो भवेत्साधोः।
तदा खलु क्षीणमोहो भण्यते स निश्चयविद्भिः।।

इह खलु पूर्वप्रकान्तेन विधानेनात्मनो मोहं न्यक्कृत्य यथोदितज्ञानस्वभावाति–रिक्तात्मसंचेतनेन जितमोहस्य सतो यदा स्वभावभावभावनासौष्ठवावष्टम्भात्तत्सन्ता–नात्यन्तविनाशेन पुनरप्रादुर्भावाय भावकः क्षीणो मोहः स्यात्तदा स एव भाव्यभावक–भावाभावेनैकत्वे टंकोत्कीर्णं परमात्मानमवाप्तः क्षीणमोहो जिन इति तृतीया निश्चयस्तुतिः।

एवमेव च मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचन–कायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि। अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि।

अब, भाव्यभावक भाव के अभाव से निश्चयस्तुति बतलाते हैं —

जित मोह साधु पुरुष का जब, मोह क्षय हो जाय है।
परमार्थविज्ञायक पुरुष, क्षीणमोह तब उनको कहे॥३३॥

गाथार्थ : [जितमोहस्य तु साधोः] जिसने मोह को जीत लिया है ऐसे साधु के [यदा] जब [क्षीणः मोहः] मोह क्षीण होकर सत्ता में से नष्ट [भवेत्] हो [तदा] तब [निश्चयविद्भिः] निश्चय के जाननेवाले [खलु] निश्चय से [सः] उस साधु को [क्षीणमोहः] 'क्षीणमोह' नाम से [भण्यते] कहते हैं।

टीका : इस निश्चयस्तुति में पूर्वोक्त विधान से आत्मा में से मोह का तिरस्कार करके, पूर्वोक्त ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक आत्मा का अनुभव करने से जो जितमोह हुआ है, उसे जब अपने स्वभावभाव की भावना का भलीभाँति अवलम्बन करने से मोह की संतति का ऐसा आत्यन्तिक विनाश हो कि फिर उसका उदय न हो — इस प्रकार भावकरूप मोह क्षीण हो, तब (भावक मोह का क्षय होने से आत्मा के विभावरूप भाव्यभाव का अभाव होता है, और इस प्रकार) भाव्यभावक भाव का अभाव होने से एकत्व होने से टंकोत्कीर्ण (निश्चल) परमात्मा को प्राप्त हुआ वह 'क्षीणमोह जिन' कहलाता है। यह तीसरी निश्चय स्तुति है।

यहाँ भी पूर्व कथनानुसार 'मोह' पद को बदलकर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्श — इन पदों को रखकर सोलह सूत्रों का व्याख्यान करना और इस प्रकार के उपदेश से अन्य भी विचार लेना।

भावार्थ : साधु पहले अपने बल से उपशम भाव के द्वारा मोह को जीतकर, फिर जब अपनी महा सामर्थ्य से मोह को सत्ता में से नष्ट करके ज्ञानस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होते हैं तब वे क्षीणमोह जिन कहलाते हैं।

गाथा - ३३ पर प्रवचन

(गाथा) ३३। यह तीसरे प्रकार की स्तुति। (स्तुति का) नम्बर तीसरा परन्तु ऊँची स्तुति... आहाहा! कल तो सब बोल आ गये थे। **अब, भाव्यभावक भाव के अभाव (से निश्चयस्तुति बतलाते हैं —**) चार शब्द (आये) हैं, देखो! भाव्य, भावक भाव के अभाव... क्या कहते हैं? यह तो ध्यान रखकर समझे तो समझ में आये ऐसा है, यह कोई कथा-वार्ता नहीं है, यह तो प्रभु की भागवत् कथा है। आहाहा! नियमसार में आता है न भाई! अन्त में आता है, नियमसार (में) भागवत् कथा। भागवत् कथा लोग कहते हैं वह नहीं, आहाहा!

यह तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ की कथा है। कहते हैं **भाव्यभावक....** यह

भावक जो कर्म का उदय सातवें में है, उसको भावक का भाव्य, जो अन्दर राग था, वह भाव्य, भावककर्म का भाव्य, वह भाव। चार बोल का अर्थ। सप्तम गुणस्थान में भी जो मोहकर्म का भावक था, उसमें अबुद्धिपूर्वक भाव्य अर्थात् राग था। उस भावक का भाव्य, वह भाव। समझ में आया? भाव्यभावक भाव अभाव। (गाथा) ३२ में अभाव नहीं था, सम्बन्ध का नाश - उपशम करके (ऐसी बात थी)। यह तो अभाव कर दिया (गाथा) ३२ में तो उपशम / दबा दिया था, यहाँ तो भाव्यभावक, अन्दर सातवें गुणस्थान में भी भावककर्म के अनुसार भाव्य अर्थात् राग था, उस भाव्यभावक भाव का अभाव। आहाहा! अब इस क्षीणमोह की स्तुति। आहाहा! है अभी स्तुति, केवलज्ञान अभी नहीं हुआ है, केवल (ज्ञान) तो उसका फल है, फिर वहाँ स्तुति नहीं है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आनन्द के नाथ की तरफ की दृष्टि और अनुभव तो है परन्तु अस्थिरता में भावक कर्म के अनुसार जो भाव्य था, वह भावकभाव्य का भाव, उसे स्वभाव का उग्र पुरुषार्थ करके — अन्दर उग्र अवलम्बन से अभाव कर देना, उसका नाम तीसरी स्तुति है। इसमें तो शब्द याद नहीं रहते, वहाँ क्या कहते थे? परन्तु कहते थे भाव्य और भावक.... घर में बहनें पूछें — तुम क्या सुन करके आये हो? परन्तु भाई, कुछ कहते थे, भाव्य और भावक — ऐसा कुछ कहते थे। भाव्यभावक भाव का अभाव... आहाहा! भाई! यह तो भगवान की अमृतधारा, आहाहा! आहाहा! भाव्य (अर्थात्) सप्तम गुणस्थान में होनेवाली विकारी दशा; भावक (अर्थात्) कर्म का निमित्त, उसके आश्रय से इतना आश्रय यहाँ नहीं है, इतना आश्रय वहाँ है — ऐसा जो भाव उसका अभाव। पहले में यह था - भाव्यभावक संकरदोष था। भाव्यभावक भाव का अभाव नहीं था, सम्बन्ध का उपशम कर दिया था, यहाँ तो अभाव कर दिया। आहाहा! गाथा -

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं।।३३।।

नीचे हरिगीत —

जित मोह साधु पुरुष का जब, मोह क्षय हो जाय है।
परमार्थविज्ञायक पुरुष, क्षीणमोह तब उनको कहे॥३३॥

गाथार्थ : जिसने मोह को जीत लिया है.... उपशम। **ऐसे साधु के....** देखो.... आहाहा! **जब मोह क्षीण होकर सत्ता में से नष्ट हो जाए....** आहाहा! पहले में तो उपशम कर दिया था, (अर्थात्) पानी में मैल है, उसे दबा दिया था; यहाँ तो मैल का नाश कर दिया। भगवान आत्मा अपना उग्र आश्रय लेकर, आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान में उसका — द्रव्य का आश्रय तो है परन्तु विशेष आश्रय लेकर। आहाहा! **मोह क्षीण होकर सत्ता में से नष्ट हो, तब निश्चय के जाननेवाले....** सन्त-मुनि — निश्चय के जाननेवाले मुनि उसे **निश्चय से उस साधु को 'क्षीणमोह' नाम से कहते हैं।....** निश्चय के जाननेवाले सन्त,.... वह राग का भावकभाव्य जो भाव था, उसे स्वभाव के अनुसार उग्र पुरुषार्थ करके नाश कर दिया, उसको क्षीणमोह कहा जाता है, उस जीव को क्षीणमोह कहा जाता है। आहाहा! अब इसमें ऐसी बातें! अन्य तो कहते हैं — दया पालो, एकेन्द्रिय (की दया) करो, यह करो, यह करो, लो! व्रत पालो अपवास करो,.... क्या था उसमें सुन न! वह तो राग है, यहाँ तो समकिती को मुनि को जो राग होता है। आहाहा! इतनी स्तुति कम है, जब राग होता है इतनी। उस राग को स्वभाव के बल के जोर से जीतमोह में जो बल था, उतना तो उपशम कर दिया था, यह तो उग्र पुरुषार्थ से.... आहाहा! अन्तर आनन्द के नाथ में उग्र पुरुषार्थ से जम जाते हैं। आहाहा! तब उस साधु को क्षीणमोह — मोह नाश हो जाता है। उसको ज्ञानी-क्षीणमोह कहा जाता है — ऐसी बातें हैं।

टीका - इस निश्चयस्तुति में.... 'इस' - है न? 'इस' निश्चयस्तुति में भगवान का — आनन्द के नाथ का आश्रय लेकर जो स्तुति अर्थात् प्रशंसा भगवान की हुई, अपने स्वरूप की (हुई)। आहाहा! **पूर्वोक्त विधान से आत्मा में से मोह का तिरस्कार करके,....** तिरस्कार किया था - जीत लिया था। आया है न? अभाव नहीं किया था। आहाहा! **आत्मा में से मोह का तिरस्कार करके, पूर्वोक्त ज्ञानस्वभाव के द्वारा....** पूर्व में कहा कि ज्ञानस्वभाव, भगवान ज्ञानस्वभाव, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप प्रभु, उस **ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक आत्मा का अनुभव करने से....** अन्य द्रव्य से भिन्न अपनी आत्मा का अनुभव करने से **जो जितमोह हुआ है,....** यह तो ३२ की (बात) साथ में लेकर ३३ में लेते हैं - यह जितमोह हुआ है। **उसे जब....** उसे जब, उस जीव को **अपने स्वभावभाव की भावना का भलीभाँति अवलम्बन....** करके, देखो! आहाहा! राग

का नाश करना है न ? तो नाश कब हो ? जीता था, उसमें तो उपशम बहुत था; नाश तो उसमें विशेष बल हो तब नाश होता है। समझ में आया ? मुनि को भी राग-द्वेष, क्रोध, मान आदि स्वभाव के अनुसरण के पुरुषार्थ से दबा दिया था, उससे यह विशेष पुरुषार्थ है, मोह में से नाश होने का, भगवान आनन्द की ओर का उग्र पुरुषार्थ से.... है ? **स्वभावभाव की भावना का भलीभाँति अवलम्बन....** भलीभाँति-यथार्थ अवलम्बन लेकर। आहाहा! उपशमभाव में ऐसा अवलम्बन नहीं था। यह तो अन्दर उग्र अवलम्बन लिया। आहाहा! **ज्ञानस्वभाव की....** अपने ज्ञानस्वभाव की, देखो! (तीर्थंकर) भगवान का ज्ञानस्वभाव, वह नहीं। अपना जो भगवान (निजात्मा का) ज्ञानस्वभाव जो त्रिकाली है। आहाहा! **भावना का भलीभाँति अवलम्बन करने से....** उपशम में जो बल था, उससे इसमें विशेष बल है। आहाहा! अपने स्वभावसन्मुख की इतनी उग्रदशा है कि अवलम्बन कर, **मोह की संतति का....** मोह की संतति / उत्पत्ति का **ऐसा आत्यन्तिक विनाश हो कि फिर उसका उदय न हो....** आहाहा! यहाँ तो ऐसी बात ली है।

मुनि को यह रागादि थे, वह आकुलता थी, दुःख था, उसको पहले उपशम पुरुषार्थ से — स्वभाव के मन्द पुरुषार्थ से रागादि को दबा दिया था। वह यहाँ त्रिकाली ज्ञानस्वभाव के भलीभाँति उग्र अवलम्बन से वह क्रोध, मान, और रागादि की पर्याय उदय में नहीं आती तो उसका नाश कर दिया।

श्रोता : ग्यारहवें में से बारहवें (गुणस्थान) में पहुँच गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो उपशमश्रेणी आठवें (गुणस्थान) में से बात है। उपशम में से क्षपक होता है — ऐसा नहीं है। यह तो स्तुति का दूसरा प्रकार वर्णन करते हैं कि जीव जब अपनी आत्मा का उग्र अवलम्बन लेता है — समकित है, ज्ञान है, चारित्र है, आनन्द है परन्तु अभी थोड़ा राग का दुःख है। आहाहा! आहाहा! सप्तम गुणस्थान में राग है, वह भावक की ओर का भाव्य / विकारी भाव है; वह स्वभावसन्मुख की दशा नहीं है। समझ में आया ? ऐसी बात, आहाहा!

श्रोता : अपूर्व बात है!

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आनन्द प्रभु, आहाहा! अमृत के आनन्द का सागर

नाथ, उसे पर से भिन्न करके अनुभव किया — ऐसा अनुभव होने पर भी, पर्याय में कर्म के उदय की ओर का झुकाव है, जुड़ान है; यदि न हो, तब तो वीतराग हो जाये। आहाहा! ऐसी गाथा आयी है! आहाहा! ३३ है न, दो तिक्के, नौ, नौ वीतरागभाव! नौ के अंक अफर होते हैं, नौ एकम नौ, नौ दूनी अठारह, एक और आठ नौ। नौ तीक्का २७, ७ और २ - नौ, नौ चौक ३६, ६ और ३ नौ, ९ पंजे ४५, ४ और ५ नौ, ९ छक्के ५४, ५ और ४ नौ, नौ सत्ते ६३, ६ और ३ नौ, ठेठ (तक) नौ-नौ... आहाहा! यहाँ क्षायिकभाव लेना है न? आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के नाथ का उग्र अवलम्बन लेकर, भलीभाँति अवलम्बन लेकर, भलीभाँति, ठीक प्रकार से अवलम्बन लेकर ऐसा। आहाहा! वह राग का जो भाव, भाव्यरूप था, उसको नाश कर दिया; पर्याय में-उदय में आया ही नहीं। पर्याय में राग आया ही नहीं। आहाहा! यह स्थिति है - ऐसा पहले ज्ञान तो करे। समझ में आया?

ज्ञानस्वभाव की भावना का.... भावना शब्द से (आशय) अन्दर एकाग्रता,.... **भलीभाँति अवलम्बन करने से....** आहाहा! **मोह की संतति....** देखो! अभी सातवें (गुणस्थान) में मोह की संतति उत्पन्न होती है। ऐसा आया न भाई! **मोह की संतति....** यह मोह की संतति अर्थात् दर्शनमोह की बात नहीं है। मोह शब्द क्यों लाया गया है? कि पर तरफ की इतनी सावधानी है, कि राग आया, राग, तो वह तो परतरफ की सावधानी है — इस अपेक्षा से मोह कहा है। परतरफ के एकत्व का मोह तो पहले टूट गया है। समझ में आया? अरे भगवान! आहाहा! तेरा पूर्ण स्वभाव सामर्थ्यशक्ति — ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान में भान / अनुभव हुआ, तथापि पूर्ण पर्याय, पर्याय में प्रगट नहीं हुई, तब तक अपनी पर्याय में कमजोरी से भावक के अनुसार राग आदि होता है; आहाहा! कर्म से नहीं। कर्म का इतना अनुसरण है। अनुसरण का उसे कुछ पता नहीं है कि यह राग है परन्तु उस ओर का (स्वभाव सन्मुखता का) अनुसरण अपूर्ण है तो इस ओर का अनुसरण है — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **मोह की संतति....** आहाहा! मोह का परिवार। संतति है न? राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, आहाहा! यह सब मोह की संतति है। आहाहा! इच्छा उत्पन्न होना, सुनने की, कहने की (इच्छा होना), वह भी मोह की संतति है। आहाहा! **ऐसा आत्यन्तिक विनाश हो....** (क्या कहा)? **ऐसा आत्यन्तिक विनाश हो कि फिर उसका उदय न हो.....** आहाहा! क्षयधारा — स्वभाव की उग्रता के पुरुषार्थ से क्षयधारा प्रगट हुई, वह राग

को क्षय कर देती है। क्षय करूँ — ऐसा है नहीं परन्तु स्वभाव का उग्र पुरुषार्थ किया तो राग उत्पन्न नहीं हुआ तो उस राग का क्षय किया - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! जो भाव्य होता था, वह स्वभाव के उग्र पुरुषार्थ से नहीं हुआ तो राग का क्षय किया, क्रोध का क्षय किया, मान का क्षय किया, जिस-जिस प्रकार के विभाव का विकल्प था, उसका क्षय किया। आहाहा!

फिर उसका उदय न हो — इस प्रकार भावकरूप मोह क्षीण हो,.... आहाहा! भावकरूप मोह क्षीण हो। उदय नाश हो जाता है। आहाहा! **(तब भावक मोह का क्षय होने से आत्मा के विभावरूप भाव्यभाव का अभाव होता है,....)** आहाहा! तब आत्मा के विभावरूप भाव्यभाव का अभाव होता है। आहाहा! त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, उस ओर झुकाव तो था परन्तु अल्प झुकाव था; इस कारण पर के अनुसरण से जो राग आदि भाव्य था, वह उग्र पुरुषार्थ से — अन्दर अवलम्बन से राग का नाश-क्षय कर दिया, मोह की संतति का नाश कर दिया। आहाहा! अब केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा! ऐसी बात ली है। समझ में आया?

मुनिराज इसमें अपनी भी बात करते हैं। भविष्य में, हम अभी तो पंचम काल के सन्त हैं तो हमें पर्याय में राग तो है; वीतरागता भी है और थोड़ा राग भी है, पूर्ण वीतरागता नहीं है। इस राग के कारण पुण्यबन्ध हो जाता है और स्वर्ग में चले जायेंगे.... आहाहा! परन्तु वह राग दुःखदायक है। इस वर्तमान में तो हम उसका क्षय नहीं कर सकते परन्तु भविष्य में (क्षय होगा)। अभी तो कुन्दकुन्दाचार्य सन्त स्वर्ग में गये हैं। आहाहा! विकल्प रहा, निर्विकल्प नहीं हुए। वीतराग दशा (पूर्ण नहीं हुई), पुण्यबन्ध हो गया, स्वर्ग का बन्ध हो गया, स्वर्ग में गये हैं। अतः यह राग था, वह दुःख है और दुःख का फल स्वर्ग है। पुण्य है न वह? अब तो हम भविष्य में... आहाहा! कदाचित् उपशमधारा भी नहीं करें तो क्षायिकधारा तो करेंगे ही। आहाहा! समझ में आया? अपनी बात लिखकर जरा पुरुषार्थ की (कमी से) हमारा पंचम काल में जन्म हो गया... मुनिपना आया, आनन्द के नाथ का (अनुभव हुआ) परन्तु कमजोरी है, तो उस कमजोरी का नाश अभी नहीं कर सकते परन्तु हम स्वर्ग में जाते हैं, वहाँ से मनुष्य होकर जब हम मुनि होंगे, तब राग का जो भाव्य था, उसका स्वभाव के बल से नाश करेंगे। आहाहा! और उसी भव में हम केवल (ज्ञान) लेंगे,

अन्तिम शरीर होगा, चरम शरीर-अन्तिम शरीर छूट जायेगा अशरीरी भगवान अकेला परमात्मदशा रह जायेगी। समझ में आया?

'सादि अनन्त-अनन्त समाधिसुख में', अनन्त आनन्द की-सादि, उत्पन्न (हुआ) तो सादि हुई, अनादि की शक्ति थी वह पर्याय में नहीं था। इस पर्याय में अनन्त-अनन्त आनन्द पर्याय में उत्पन्न हुआ। अब 'सादि अनन्त-अनन्त समाधिसुख में, अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो, अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा।' अपूर्व अवसर आता है न श्रीमद् में? 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा' इसका हिन्दी है, हिन्दी है। भोपाल में बनाया है। अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आयेगा — यह वहाँ लेकर अन्त में बनाया है।

'सादि' अनन्त हो, वहाँ है, यह कोई शब्द है अन्दर - लिया है। अनन्त-अनन्त अनुभवगोचर मात्र रहा, वह ज्ञान — हिन्दी बनाया है अपूर्व अवसर। वह क्षय ऐसा हो कि फिर से उदय न हो, **वह भाव्यभावकभाव का अभाव, एकत्व होने से टंकोत्कीर्ण** एकरूप दशा अन्दर हो गयी। जरा राग का अस्थिरता का द्वैत उत्पन्न था, वह छूटकर एकत्व हो गये। **निश्चल परमात्मा को प्राप्त हुआ, वह क्षीणमोह जिन कहलाता है। यह तीसरी स्तुति है।**

विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)